नैतिक मूल्य और आधुनिक हिन्दी कहानी

❐ डॉ. सत्यपाल श्रीदास

यह एक स्वत: प्रमाणित तथ्य है कि हर संवेदनशील लेखक या कवि अपने समाज का प्रतिनिधि होता है जो अपने परिवेश की हर प्रकार की घटनाओं, समस्याओं तथा गतिविधियों के प्रति सदा एक जागरूक दृष्टि ही नहीं रखता, बल्कि उनके साथ पूरी तरह जुड़ कर उन्हें अपने अन्तरात्म के धरातल पर उतार कर उनसे जो अनुभूतियां प्राप्त करता है, अन्तत: वे ही उसका भोगा हुआ यथार्थ समझा जाता है और फिर वही उसकी संवेदना को झकझोर कर या उसमें उथल-पुथल मचा कर उसके विचारों, भावों और कल्पनाओं के साथ-सामन्जस्य करके उसे कुछ लिखने के लिए प्रेरित करता है। परिणामत: वे घटनाएं, समस्याएं या सरोकार ही उसकी कविताओं, कहानियों एवं उपन्यासों में प्रतिबिम्बित और रूपायित होते हैं, जिन्हें पढ़ कर सहृदय पाठक प्रभावित भी होते हैं और आन्दोलित भी।

हम देखते हैं कि हमारी दीर्घकालीन परतंत्रता के कारण आधुनिक युग में चाहे प्रतिक्रिया रूप में, चाहे पश्चिम और वैश्वीकरण के बढ़ते प्रभाव से आधुनिकता तक अनिवार्यता कम आई, पर इससे हमारी संस्कृति पर अपसंस्कृति हावी होने लगी। परिणामत: शनैः-शनै हमारे समाज में नैतिक मूल्य भी प्रभावित हुए। संयुक्त परिवार टूटने लगे, जिससे पारिवारिक रिश्तों में दरारें पड़ने लगीं, वैवाहिक सम्बन्धों में पारम्परिक विश्वास फीके पड़ने लगे, पतिव्रत धर्म और पति को परमेश्वर समझना विचार की उपज समझा जाने लगा, भ्रूण हत्या जैसे जघन्य अपराधों से समाज क्लंकित होने लगा, समाज में भ्रष्टाचार अनेक रूपों में अपना सिर उठाने लगा, जिससे हिंसा, लूटमार की प्रवृत्ति बढ़ने लगी। रिश्वतखोरी, असहायों का शोषण, शराब तथा अन्य नशीले पदार्थों का सेवन बढ़ने लगा, बलात्कार एवं वेश्यावृत्ति बढ़ने लगी, दिनानुदिन बढ़ती महंगाई ने मिलावट की प्रवृत्ति को बढ़ावा देना आरम्भ कर दिया, जिससे हमारा खान-पान और स्वास्थ्य भी प्रभावित होने लगा और फिर आ धमका उग्रवाद एवं आतंकवाद रूपी राक्षस। इसने तो अपने अप्रत्याशित दुष्कृत्यों से जघन्य ताण्डव मचाना शुरू कर दिया जिसकी मिसाल देनी भी कठिन हो गई। इन सब प्रकार की सिर उठाती विसंगतियों ने हमारे समकालीन साहित्य को भी प्रभावित किया।

इस परिप्रेक्ष्य में डॉ. उमा शुक्ला का यह कहना बेशक सार्थक तो है-''मूल्यों की संक्रान्ति के इस युग में मूल्य दृष्टि कौन प्रदान करेगा ? जीवन मूल्यों और जीवनादर्शों की रिक्तता किसी

भी साहित्य को स्थायित्व प्रदान नहीं करती। जो साहित्य जनता को मुक्ति-पथ की ओर अग्रसर नहीं करता, वह कोरा वाग्विलास है।"[1]

परन्तु हमें इस तथ्य को नहीं भूलना चाहिए कि भक्तिकाल में सन्त साहित्य ने हमें जो पवित्र धरोहर प्रदान की उसने हमारी सांस्कृतिक परम्परा में अन्तर्निहित नैतिक मूल्यों को बचाने के लिए जो पृष्ठ भूमि पर आधार भूमि तैयार की उस पर यद्यपि परवर्ती काव्य में भले ही अनेकों प्रहार हुए तो भी उसके अस्तित्व की मूलभावना को कोई विशेष हानि नहीं पहुँची। हमारी संस्कृति की अमर प्राणवत्ता की यही तो पहचान है।

जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति और भाषा अकैडमी द्वारा 20-21 नवंबर 2009 में आयोजित दो दिवसीय अखिल भारतीय हिन्दी लेखक सम्मेलन के अवसर पर वाराणसी से पधारे डॉ. अवधेश प्रधान ने मुख्यवक्ता के रूप के अपने भाषण में साहित्य रचना के संदर्भ में धनुष की प्रत्यंचा पर तीर चढ़ा कर पीछे की ओर खींचते हुए छोड़कर अपना लक्ष्य साधने जैसे प्रतीकात्मक उदाहरण द्वारा यह संकेत दिया था कि हमें साहित्य रचना करते समय अतीत, वर्तमान और भविष्य तीनों कालों का तालमेल रखकर अपना लेखन कार्य करना चाहिए। अर्थात् हमें अपने अतीत में स्थापित मूल्यों को विरासत के रूप में सम्भालते, पहचानते हुए उनका वर्तमान के साथ सामन्जस्य करके भविष्य अर्थात् आने वाली पीढ़िओं के लिए सत्यं, शिवं और सुन्दरम से अनुप्राणिय संपदा छोड़ने का दायित्व निभाना चाहिए। तभी हम उऋण हो सकेंगे उनके प्रति।

यह हमारे लिए गर्व की बात है कि मुन्शी प्रेमचन्द समग्र भारतीय कथा साहित्य में नई क्रान्ति का सूत्रपात करके हिन्दी कथा साहित्य के अग्रदूत बन गए। यद्यपि वह आए तो उर्दू से हिन्दी में, परन्तु ऐसे आए कि सदा के लिए हिन्दी के ही होकर रह गए। उन्होंने परवर्ती कथा साहित्य को जो रोशनी दी उससे सभी भारतीय भाषाओं का कथा साहित्य किसी-न-किसी रूप में अवश्य प्रेरित हुआ, इसीलिए समग्र भारतीय कथा साहित्य उनके अवदान का सदा ऋणी है। यद्यपि नई चेतना की विचारधारा का बीजारोपण भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पहले ही कर चुके थे, परन्तु मुन्शी प्रेमचन्द ने उसे जो पानी और खाद दिया वस्तुतः उसी से वह अंकुरित और पल्लवित हुआ। संयोगवश लगभग उसी काल में राजनैतिक क्षेत्र में पहले लोकमान्य तिलक जैसे नेताओं के और बाद में साथ-साथ ही महात्मा गाँधी जी के आगमन से समग्र भारतीय साहित्य भी प्रभावित होने से अछूता न रह सका।

मुन्शी प्रेमचन्द की कई कहानियों में हमें नैतिकता के ह्रास का चित्रण पढ़कर यदि क्षोभ होता है तो साथ-ही-साथ उनके पात्रों में उनके कारण जो पश्चाताप वा प्रायश्चित भावना की जो अभिव्यक्ति सामने आती है उससे उनमें जो सुधार या उत्थान की ओर बढ़ने के लिए जिस अन्तर्द्वंद्व का संकेत मिलता है उससे हम असीम सकून या राहत भी अनुभव करते हैं।

---

1. *स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय साहित्य में नारी का स्वरूप सम्पादक श्रीधर शास्त्री हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, प. ४४*

उनकी प्रसिद्ध कहानी कुसुम की नायिका कुसुम यद्यपि पूर्णतया भारतीय परम्परा में पली एक महिला है, परन्तु विवाह के कुछ समय बाद ही जब उसका पति अपनी विदेश जाने की धुन में अपने पिता से कुछ रुपया लाकर उसे देने के लिए विवश करता है तो वह मायके आ कर उसे एक खीझ-भरा पत्र लिख कर उसके द्वारा दिये हुए गहने और कपड़े आदि लौटाने की धमकी देती है। जब उसका पिता अपनी बेटी के मान-सम्मान और सुख की कामना से कुछ रुपये का प्रबन्ध करके भेजने के लिए तैयार भी हो जाता है तो वह अपने पिता को ऐसा करने से रोक कर कहती है- ''यह उसी तरह की डाकाजनी है जैसी बदमाश लोग किया करते हैं। किसी आदमी को पकड़ कर ले गए और उसके घरवालों से मुक्तिधन के तौर पर अच्छी रकम ऐंठ ली।''[1]

जब उसकी मां उसे समझाती हुई कहती है कि पति तो देवता स्वरूप होता है, अत: उसे नाराज़ नहीं करना चहिए तो कुसुम और अधिक क्रोध से तमक कर उत्तर देती है- ''ऐसे देवता का रूठे रहना ही अच्छा है, जो इतना स्वार्थी, इतना दम्भी, इतना नीच है उसके साथ मेरा निर्वाह न होगा। मैं कहे देती हूँ कि वहां रुपये गए तो मैं ज़हर खा लूँगी।''[2]

इस कहानी से स्पष्ट है कि जब एक पति 'पति-पत्नी' के पवित्र सम्बन्ध की अपेक्षा रुपये-पैसे को अधिक महत्त्व देता है तो उसके पति होने की नैतिकता स्वत: धूलिसात् हो जाती है।

प्रेमचन्द की एक अन्य कहानी 'वेश्या' की नायिका माधुरी यद्यपि अपने वेश्या के व्यवसाय द्वारा पर्याप्त धन अर्जित कर लेती है, परन्तु तो भी उसके हृदय में एक कुंठा या टीस पल रही है। उसे एक कुलीन नारी बनने की हमेशा प्रबल चाह सालती रहती है। इसीलिए वह एक दिन दयाकृष्ण से कह उठती है- ''तुमसे हाथ जोड़ कर कहती हूँ कि यहाँ से किसी ऐसी जगह चले-चलो जहाँ हमें कोई न जानता हो वहाँ शान्ति के साथ पड़े रहेंगे। मैं तुम्हारे साथ सब कुछ झेलने को तैयार हूँ। क्या तुम मुझे अपनी शरण में लेने को तैयार हो ? मैं सोने के महल को भी ठुकरा दूँगी, लेकिन इसके बदले में मुझे किसी हरे वृक्ष की छांह तो मिलनी चाहिए।''[3]

जब दयाकृष्ण उसे अपनाने में आनाकानी करता है तो वह अति दुखी होकर कहती है- ''क्या तुम वेश्या में स्त्रीत्व का होना सम्भव से दूर समझते हो ? तुम इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते कि वह क्यों अपने प्रेम में स्थिर नहीं होती ? तुम नहीं जानते कि प्रेम के लिए उसके मन में कितनी व्याकुलता होती है और जब वह सौभाग्य से उसे पा लेती है तो किस तरह प्राणों की भाँति उसे संचित रखती है।''[4]

---

1. मान सरोवर पृ० 24
2. वही प्र. 24
3. वही पृ. 24
4. वही प० 50

इस कहानी की नायिका 'वेश्या' को जब यह एहसास होने लगता है कि धनार्जन की दृष्टि से उसका व्यवसाय यद्यपि सन्तोषजनक है, परन्तु उसमें नारीत्व के मूल्यों के ह्रास का कारण होने के कारण सब कुछ अति निन्द्य है तब वह एक कुलीन नारी बन कर जीवन व्यतीत के लिए आतुर हो जाती है।

मारशिस की हिन्दी कहानीकारा भानुमती नागदान की 'अनुबन्धन' की नायिका विलास का अवनीश के साथ विवाह से पहले अपने भाई के मित्र स्वप्निल के साथ प्रेम सम्बन्ध हो जाता है। उसके विवाह के बाद स्वप्निल के विदेश चले जाने से तथा वहीं विवाह कर लेने से पर्याप्त समय तक उनका सम्पर्क टूट जाता है। इसी बीच विलास एक बेटी और एक बेटे को जन्म भी दे देती है। पर्याप्त अन्तराल के बाद जब स्वप्निल पोर्ट लुई में पहुँचने के बाद सहसा अवनीश की अनुपस्थिति में उनके घर आ पहुँचता है और विलास के साथ हाथ मिलाता है तो वह अपने हृदय में एक अजीब-सा स्पन्दन अनुभव करती हुई सोचती है कि अवनीश के साथ उसका विवाह उसकी इच्छा के विपरीत हुआ था। इसीलिए शुरू-शुरू में अवनीश का स्पर्श भी उसे अखरता था-"मैं कैसे उन्हें समझाती कि मन की दुनिया एक अलग दुनिया है। विवाह की वेदी की पवित्र अग्नि और मन्त्रोच्चारण तथा अर्थहीन रस्में उसे बदल नहीं सकती।"[1]

इतने में जब अवनीश और उनके दोनों बच्चे भी घर पहुँच जाते हैं तो विलास की स्थिति बड़ी नाजुक हो जाती है। वह सोचती है कि मानो उसका व्यक्तित्व विभाजित है-"मेरी स्थिति अजीब थी। मैं विभाजित क्षणों में जी रही थी। स्वप्निल और अवनीश दोनों से मुझे प्रेम था। अवनीश मेरे पति। मेरे बच्चों के पिता। हमारे सुख और आराम और भविष्य की उन्हें चिन्ता थी। उनके प्रति मेरे प्रेम में कर्त्तव्य था। कृतज्ञता थी.....। इन्हीं तत्वों की वजह से हमारा प्रेम निरन्तर गहरा होता गया था। स्वप्निल के प्रति भी मेरे मन में अगाध प्रेम है। उसे मैं मोह नहीं कह सकती। वह ऐसा प्रेम था जो एक औरत को मर्द के साथ होता है, जहां संकोच नहीं था, डर नहीं था। कर्त्तव्य की चिन्ता नहीं थी। आज इतने सालों के बाद भी स्वप्निल मेरे बिल्कुल करीब है तो मेरा मन जैसे उमड़-उमड़ कर बाहर आना चाहता है। मैं चीख-चीख कर लोगों को यह कहना चाहती हूँ कि स्वप्निल से मुझे प्रेम है और सच्चे प्रेम को शादी की दकियानूसी रस्में मिटा नहीं सकतीं। यह सच है कि उसने कभी मुझे स्पर्श तक नहीं किया, पर आज मेरा मन करता है कि मैं स्वयं उसका स्पर्श करूं। उसे चूमूं, उसे अपनी बाहों में छिपा लूं। यही मेरे प्रेम की पुकार है।"[2]

पर उसी क्षण मानों एक झटके से उसके भीतर छुपे पत्नीत्व के संस्कार फिर उसे जब झकझोरने लगते हैं, तब वह अन्यथा सोचने को विवश हो जाती-"पर अब वह अवनीश की है और अब वह उसकी वस्तु किसी दूसरे को कदापि नहीं दे सकती।"[3]

---

1. धर्मयुग 15 जनवरी 1974 पृ० 13-14
2. वही पृ० 13-14
3. वही पृ० 13-14

नारी-मनोविज्ञान का मार्मिक चित्र उपस्थित करने वाली यह कहानी पत्नी और मां के दायित्वों के प्रति सजग करने वाली होने के कारण नायिका के द्वारा आत्म मन्थन करके अपने भीतर कुलीन नारीत्व के नैतिक चरित्र की रक्षा और उत्थान की झाँकी प्रस्तुत करती है।

उषा प्रियंवदा की कहानी 'वापसी' का नायक गजाधर बाबू रेलवे विभाग में पैंतीस वर्ष नौकरी करता हुआ समय निकाल कर शहर में अपना मकान बना अपनी बेटी समेत तीन बच्चों और पत्नी को बच्चों की पढ़ाई की खातिर वहीं रखकर स्वयं जैसे-कैसे अपने रिटायर्ड होने तक सुखी जीवन की चाह से एकांकी जीवन व्यतीत करता है। इसी बीच उसके बड़े बेटे अमर की नौकरी भी लग जाती है और विवाह भी हो जाता है, जब कि छोटा बेटा नरेन्द्र और बेटी बसन्ती अभी पढ़ रहे हैं।

सेवा-मुक्ति के बाद अपने मन में अपने परिवार के साथ रह कर सुख और शान्ति के दिन काटने के सपने संजोए हुए वह जब अपने कार्यालय के चपरासी गनेशी द्वारा अपना सामान बंधवाने लगता है तो अचानक पास रखे हुए एक बंद डिब्बे को देखकर जब गनेशी को उसके बारे में पूछता है तो वह उत्तर देता है- ''साहब, घरवाली ने साथ में बेसन के कुछ लड्डू रख दिए हैं। कहा, बाबू जी को पसन्द थे। अब कहाँ हम गरीब लोग आपकी कुछ खातिर कर पाएंगे।''[1]

यह सुनकर गजाधर बाबू के मन में घर जाने के लिए होने वाली खुशी के साथ-साथ एक कल्पनातीत बिछोह की पीड़ा भी अनुभव होने लगती है। जब वह घर पहुँचता है तो पत्नी समेत सभी परिवार जनों के रूखे व्यवहार से कुछ दिन उदास रहने के बाद अन्ततः अति दुखी होकर वहाँ से कहीं चले जाने का निश्चय कर लेता है। तो उसका छोटा बेटा नरेन्द्र बड़ी तत्परता के साथ उसका टीन का ट्रंक और पतला-सा बिस्तर तैयार कर रिक्शा लाकर जब उसे बैठने के लिए कहता है तो वह रिक्शा पर बैठ कर अपने सभी परिवार जनों पर एक मोह और वेदना मिश्रित दृष्टि डालकर जैसे ही दूसरी ओर मुंह मोड़ कर देखने लगता है तो रिक्शा चल पड़ता है।

इस इक्कीसवीं सदी में पारिवारिक रिश्तों में आ रही दरारें और रूखेपन पर यह कहानी करारी व्यंग्य चोट करती है, परन्तु साथ ही गनेशी और उसकी पत्नी के चरित्रों के माध्यम से कहानी लेखिका यह सन्देश भी देती है कि कुछ भी हो परन्तु मानवीय नैतिक-मूल्य अभी भी कहीं न कहीं अवश्य ज़िन्दा हैं।

जम्मू-कश्मीर राज्य के जम्मू संभाग के कहानीकार ओम गोस्वामी की कहानी 'जीवन युद्ध' भी लगभग इसी विधा की कहानी है। 'वापसी' कहानी का नायक गजाधर बाबू और 'जीवन युद्ध' का नायक रांझू राम दोनों सेवामुक्त होने के बाद अपने-अपने पुत्रों द्वारा उपेक्षित

---

1. *कहानी विविधा (कहानी संग्रह) संपादक डॉ. देवी शंकर अवस्थी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-1992 पृ० 152*

होकर घुटन भरी पीड़ा अनुभव करते हैं। एक अपनी पत्नी और सन्तान द्वारा उपेक्षित होकर घर छोड़ कर ही चला जाता है, जबकि दूसरा (रांझू राम) अपने पाँचों पुत्रों के विदेश चले जाने पर पत्नी सहित अपने घर में रहता हुआ ही उपेक्षित जीवन झेलने को विवश है।

इन्दुबाली की कहानी- ''मैं दूर से देखा करती हूँ'' की नायिका अपने पति दीपक से असीम प्यार करती है, परन्तु दुर्भाग्य से उसका पति शराब के नशे का व्यसनी होकर व्यभिचारी भी हो जाता है। परिणामतः उसकी पत्नी अपने आपको उपेक्षिता समझकर अति दुखी रहने लगती है। वह उसे सम्भालने का भरसक प्रयत्न करके भी असफल होकर निराश हो जाती है। अन्ततः उसके मन में लगातार प्रतिशोध और विद्रोह की भावना उग्र होती चलती है। तब वह अपनी एकमात्र सन्तान अलका के प्रति भी बेरुखी का व्यवहार करने लगती है। उसके हृदय में एक अकथनीय अभाव हर समय उसे सालता रहता है। एक दिन वह साहस करके अपने घर की चार-दीवारी से बाहर निकल पड़ती है और सोचती है- ''मैं अपने पति को अनन्य प्यार देकर दासी बनना स्वीकार न कर सकी। मैं घर से बाहर निकल आई। दिशा ज्ञान भूल गई। कभी पहले निकली जो न थी। नवयुवक हर साँस में मेरी तरफ देखते। मेरे अद्वितीय यौवन को निहारते। मैं सब समझती और मन में गर्वित हो जाती। मेरा प्यार मेरे आँचल में एकत्रित होने लगा तो मैं बोझ से कराह उठी। मन में आया क्यों न दीपक की तरह ही जी भर कर लुट जाऊँ ? देखूं कैसा आनन्द है इसमें ? प्रथम मौका मिलते ही मैं लुट भी गई। वह दीपक का ही एक मित्र था..... एक दिन बदले की भावना ने मेरा सब कुछ भस्म कर दिया।''[1]

पर अन्ततः एक दिन उसे अपने किये पर घृणा भरा पश्चाताप होने लगता है। उस समय वह अपने व्यक्तित्व को एक प्रकार से खण्ड-खण्ड हुआ महसूस करती है। जब वह देखती है कि दीपक तो अपने आपको सुधार रहा है, तब मानो वह उससे भागने की कोशिश करती है। जहां तक कि अपनी बेटी अलका से भी डरने लगती है और सोचती है-''मैं अपने अन्दर की नारी को क्षमा न कर सकी..... अब मैं न नारी हूँ ..... न पत्नी ..... न माँ ..... न प्रेमिका। सब का रूप देखा। सब का अपना-अपना स्वाद भी था। पर किसी में भी स्थिरता न बन पाई। अपने ही हाथों लुट गई। पत्नी बनी भूल थी। मां बनी भूल थी। प्रेमिका बनी भूल थी। जीवन ही भूल-भुलैया सा बन गया।''[2]

यह कहानी यह तथ्य स्पष्ट करती है कि कभी-कभी मनुष्य प्रतिक्रियात्मक प्रतिशोध की भावना से तथा अपनी मानसिक दुर्बलताओं के कारण गलत कदम उठा कर मानवोचित नैतिक मूल्यों का ह्रास करता हुआ पतनोन्मुख होने लगता है, परन्तु यदि उसके भीतर सुसंस्कार जागने लग पड़ें तो वह उन गलतियों के लिए पश्चाताप करके अपना सुधार भी कर लेता है।

इन्दुबाली की एक अन्य कहानी-''धरती के अंगारे'' उसकी पहली कहानी की अपेक्षा वर्तमान परिप्रेक्ष्य के सर्वथा अनुरूप है। पत्र रूप में रची कहानी है यह।

---

1. मेरी तीन मौतें पृ० 40

2. मेरी तीन मौतें पृ० 41

उपमा अपनी मित्र कल्पना को पत्र लिखती हुई प्राचीन नारी की आधुनिक नारी के साथ तुलना करती हुई कहती है कि अब वह न तो पुरुष की सम्पत्ति है और न ही मात्र उसके भोग की सामग्री। यदि वह है तो केवल जीवन साथिन, मित्र और उसके जीवन की पूरक। आज पुरुष ने प्यार को गौण रूप और वासना को प्रभुसत्ता दे रखी है। पुरुष नई-नई कलियों का रसपान करते हैं, परन्तु स्त्री के लिए सब रस नहीं। वह प्यार को प्रधान मानती है।[1]

आगे चल कर वह नारी के स्वतन्त्र व्यक्तित्व की वकालत करती हुई कहती है-"समाज के बदलते रूप में स्त्रियां जीवन-संग्राम में भी पुरुषों के साथ बराबर की स्पर्धा करतीं हैं। वे अब प्यार की सूनी दुकान खोल कर नहीं बैठी रहेंगी बल्कि हर क्षेत्र में पुरुष के साथ रहेंगी। ..... उनमें साहस है, शक्ति है। असम्भव शब्द उसका परिचित नहीं है। अबला भाव से दूर, बहुत दूर निकल गई है आज नारी।"[2]

इस कहानी से यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि आज की नारी पुरुष की स्वेच्छाचारिता के विरुद्ध तीव्र आक्रोश के साथ उठ खड़ी हुई है। वह समझती है कि युगीन संदर्भों के अनुसार नैतिक-मूल्यों की परिभाषा भी बदल रही है। पुरानी लीक पर चलना अब उसके लिए एक दकियानूसी सोच के सिवाय कुछ नहीं।

इस संदर्भ में यह तथ्य स्पष्ट कर देना उचित होगा कि जो हिन्दी कथाकार अपनी परम्परा के साथ बंधे हुए हैं वे तो नैतिकतावादी हैं जब कि आज के लेखकों का एक ऐसा वर्ग उभर रहा है जो परम्परा के सारे स्थापित नैतिक-मूल्यों के मानदण्डों के विरुद्ध विरोध करने को कटिबद्ध है। इस बारे में अगले पृष्ठों में चर्चा की जाएगी।

दीप्ति खण्डेलवाल की कहानी-"ये भी कोई गीत है" में निशा और राजेश, पुष्पा और शेखर, तथा दीपाली और इन्द्रनाथ के दाम्पत्य जीवन में सभी कुछ अधूरापन अनुभव कर रहे हैं। सभी अपने-अपने स्थान पर घुटन, असन्तोष और क्षोभ अनुभव कर रहे हैं। इसीलिए निशा कहती है-'मैं पत्नीत्व, गृहणीत्व और मातृत्व के सारे बन्धन भूल कर कुछ क्षणों के लिए मुक्त हो जाना चाहती हूँ। मन का मृग किसी अशेष तृप्ति की भावना से फिर भटकने लगा है।' आखिर ऐसा क्यों ? आज औसत पुरुष यदि प्राचीन परम्पराओं और नैतिक मूल्यों को तिलांजलि देने को तत्पर है तो आज की नारी भी प्रतिक्रिया स्वरूप अपने पत्नीत्व और मातृत्व के दायित्वों के प्रति अपेक्षाकृत कम सजग दिख रही है। अब उसका उत्सुकता भरा झुकाव भी अच्छी प्रकार सज-धज कर पार्टियों और क्लबों में जाने की ओर है।

पुष्पा शेखर के प्रति पूर्णतया समर्पित है, परन्तु शेखर की ओर से अनुकूल व्यवहार न मिलने पर अपने भीतर एक कुण्ठा और अपूर्णता अनुभव करती हुई खींझती है। दीपाली एक लेडी डॉक्टर (सर्जन) है जबकि उसका पति इन्द्रनाथ प्रोफेसर है। दीपाली की आय चूँकि अपने

---

1. वही पृ० 235
2. वही पृ० 237

पति से अधिक है इसीलिए उसमें अहम्भाव घर कर जाता है। परिणामतः उनका दाम्पत्य जीवन असन्तुलित होने के कारण इन्द्रनाथ को आत्महत्या करने के लिए विवश होना पड़ता है।

इस कहानी से यह संकेत मिलता है कि इसके सभी पात्रों में नैतिक-मूल्यों के हो रहे ह्रास के कारण ही इनके दाम्पत्य जीवन सुखी नहीं हैं। पृथ्वीराज पोंगा की कहानी 'सुरंग' की नायिका नीरा अपने पति हरवंश से इसलिए क्षुब्ध रहती है कि वह अपनी व्यापार सम्बन्धी व्यस्तताओं के कारण अधिकतर घर से बाहर ही रहता है। नीरा को यद्यपि घर में सभी सुख-सुविधाएं प्राप्त हैं तो भी वह अपने मानसिक धरातल पर एक अभाव की पीड़ा से ग्रस्त होने के कारण सदा दुखी रहती है। प्रतिक्रिया स्वरूप वह एक दिन सुधीर नामक युवक के चंगुल में फंस कर प्रेम-सम्बन्ध स्थापित कर लेती है और हरवंश की अनुपस्थिति में सुधीर के साथ अपनी इच्छानुसार होटलों और सिनेमा घरों में जाकर मौजमस्ती करती है। अन्ततः स्थिति यहां तक पहुँच जाती है कि वह अपने पति से तलाक लेने को भी तैयार हो जाती है। परन्तु जब उसके मन में यह भाव उभर आता है कि यद्यपि वह अपने पति से सन्तुष्ट नहीं है, परन्तु वह तो उसे आदर्श पत्नी समझ कर उससे बेहद प्यार करता है तो उसे पश्चाताप की भावना से असह्य घुटन होने लगती है और इसी मानसिक उधेड़-बुन की स्थिति में पहुँचती हुई वह एक दिन अपने पति के चेहरे को अपने बैड रूम, पार्क, ड्राईंगरूम आदि सभी जगह से झांकता हुआ और 'नीरा-नीरा' कह कर पुकारता हुआ अनुभव करती है। परिणामतः उसके बौद्धिक और मानसिक धरातल पर एकदम परिवर्तन आ जाता है जिस से प्रेरित होकर वह सुधीर के लिए अपने घर का दरवाज़ा हमेशा के लिए बन्द कर के आत्महत्या करने लगती है।

यहाँ यह तथ्य ध्यातव्य है कि हम आए दिन देखते हैं कि आज के असन्तुष्ट युवा मानस में तीव्र आक्रोश भरा पड़ा है। स्थापित व्यवस्थाओं के प्रति उसके मन में उग्र विरोध की भावना है। आज वह ऐसी अन्धदौड़ में है कि कभी तो वह दिग्भ्रमित होकर विनाश की राह पकड़ता है तो कभी रचनात्मक दृष्टिकोण अपनाकर अच्छाई की ओर भी बढ़ने लगता है। हम देखते हैं कि विश्वविद्यालयों को मिलाकर लगभग सभी शैक्षणिक संस्थाओं में छात्र यूनियनों के चुनावों के कारण अथवा कई अन्य समस्याओं के कारण कभी-कभी तोड़-फोड़, हिंसा, जुलूसबाजी, आगज़नी आदि अनेक हिंसक हथ-कंडे अपनाए जाते हैं। दीप्ति खण्डेवाल की कहानी - 'कोलाहल' और 'मूल्य' में ऐसे अनेकों मुद्दों की अक्कासी मिलती है।[1]

वैश्वीकरण के आगमन के प्रभाव से या यों कहें कि पश्चिम की अन्धा- धुन्ध नकल से पुरुष और स्त्री में जो उन्मुक्त यौन सम्बन्धों की प्रवृत्ति घर करती जा रही है उससे दाम्पत्य

---

1. *स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय साहित्य में नारी का स्वरूप सं. श्रीधर शास्त्री, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग 1987 पृ० 52*

   विशेष :- देखिए - डॉ. वार्ष्णेयकृत द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० 69

जीवन में हर समय दरारें आने की सम्भावना बनी रहती है।

कमलेश्वर की कहानी-''कुछ नहीं कोई नहीं'' में गौरी का पुलिस के सिपाही दीवान के साथ यौन सम्बन्ध हो जाने से दीवान का पुत्र सूरज उससे नाराज़ होकर उसके साथ मार-पिटाई करता है, जिससे दीवान बेहोश हो जाता है। सूरज गौरी को भी नसीहत करता है कि वह दीवान को अपने पास न आने दे। दीवान एक झूठे इलज़ाम के तहत सूरज को जेल में भी भिजवा देता है, परन्तु गौरी क्योंकि बीच में सूरज की ओर भी आकर्षित हो रही थी, अतः वह अपनी मन्दिर बनवाने के लिए जोड़ी हुई पूंजी से सूरज को छुड़वा लेती है, परन्तु दीवान उसे पुनः पकड़वाने की कोशिश करता है, जिससे वह भूमिगत हो जाता है। किसी गुप्त स्थान से गौरी को पत्र लिख कर कहता है कि वह आकर उसे मिल जाए। गौरी तब तक गर्भवती हो जाने पर उसे उत्तर देती हुई अपनी बेबसी व्यक्त करके लिखती हैं-''मैं बेबस थी। दीवान को नहीं रोक सकी क्योंकि मर्द के बिना स्त्री का जीवन अधूरा है..... जबसे दीवान जी को यह पता चला है, वह यहाँ नहीं आते। अब मैं क्या करूँ ? तुमने बहुत समझाया पर मैं चूक गई। अब मेरा क्या होगा ? शायद मैं छट-पटाकर इसी घर में अकेली मर जाऊँगी। अब तो दोहरा पाप है। अकेली मर जाती तो ठीक था। खैर, भुगतूंगी। तुम्हें सौगन्ध है अगर अपने को जोखिम में डालकर इधर आने की कोशिश की। मैं कुछ-न-कुछ कर लूंगी इन्तजाम।''[1]

पत्र पढ़ कर सूरज आग-बबूला होकर दो पिस्तौल तथा कारतूस की पेटी बांध कर और घोड़े पर सवार होकर चल पड़ता है और शीघ्र ही गौरी के द्वार पर आ धमकता है। पहुँचते ही आँखें लाल करके गौरी को घूर-घूर कर देखता है। तब डरी-सहमी गौरी कहती है- ''लो मुझे मार दो सूरज। तुम मार दो मुझे, चैन आ जाएगा। जो कुछ कर बैठी हूँ, उसे कैसे मिटा दूं ? ..... मेरे हाथ में कुछ नहीं था।''[2]

इस कहानी से स्पष्ट आभास होता है कि दीवान ने गौरी की कमजोरी का लाभ उठा कर उसके साथ बलात्कार किया है। जिससे क्षुब्ध होकर गौरी पश्चाताप करती है। सूरज चाहे प्रतिक्रियास्वरूप परन्तु अपने पिता और गौरी को उनके कृत्य की सजा देना ही चाहता है जबकि उसका गौरी के प्रति आकर्षित होना उसके चरित्र को भी लान्छित होने से बचने नहीं देता। अतः हम कह सकते हैं कि इस कहानी में तस्वीर के दोनों पहलु हैं।

वर्तमान समय में चल रहे महिला सशक्तिकरण आन्दोलन ने कुछ कहानीकारों को भी इस विषय में पर्याप्त रूप से प्रभावित किया है। उन्होंने अपने लेखन में पुरानी परम्पराओं के अनुसार स्थापित नैतिक मूल्यों का उपहास उड़ाते हुए उन्मुक्त यौन सम्बन्धों की वकालत की है या कर रहे हैं। राजेन्द्र यादव की 'प्रतीक्षा, जहाँ लक्ष्मी कैद है,' मोहन राकेश की 'मलबे का मालिक', निर्मल वर्मा की-'वीक एण्ड लवर्स,' उषा प्रियंवदा की 'ज़िंदगी और गुलाब के फूल, पूर्ति, चाँद चलता रहे,' कृष्णा सोबती की- 'यारों के यार', यशपाल की-'ज्ञानदान',

1. *श्रेष्ठ कहानियां पृ० 74*
2. *श्रेष्ठ कहानियां पृ० 75*

ब्रह्मचर्य, धर्म रक्षा और चौरासी लाख योनि, आदि अनेकों कहानियों में इसी विषय को खुलकर उजागर करके चित्रित किया गया है। और फिर मृदुला गर्ग तो इस विषय में सब से आगे निकली हुई प्रतीत होती हैं। परन्तु, उन्मुक्त यौन सम्बन्धों के खुले समर्थक होकर भी ये कहानीकार वेश्यावृत्ति की नखेधी करते हुए ही दिखाई पड़ते हैं। यशपाल की 'लैंपशेड' कहानी इस विषय की अक्कासी करने वाली एक महत्त्वपूर्ण कहानी है। हिटलर के यहूदी जेल शिविर के जनाना विभाग का कमांडर हांसबोखन वाल्ड अपनी प्रेमिका को उपहार में जो 'लैंपशेड' भेजता है वह एक यहूदी लड़की की चमड़ी से बनाया हुआ है और उस पर 'वेश्या' शब्द उकेरा हुआ है। वह उसे देखते ही आग बबूला होकर अपने प्रेमी को एक लम्बा पत्र लिखकर यों फटकारती है-''जघन्य हिंसक पशु तेरे हिंसक सिद्धान्तों और प्रकृति से नारी पर चरम अत्याचार और अपमान का चिह्न पहुँचा। लानत! सभी जातियों, नस्लों की नारियों का नारीत्व ही उनका मूल-अस्तित्व है..... इत्यादि'' अन्त में ..... तेरी भावना के मूर्तशेड के साथ तेरे-मेरे सम्बन्ध भी जल गए।[1] यह कहानी यशपाल की श्रेष्ठ कहानियों में से एक है।

आज के संदर्भ में जब औसत मध्यवर्ग परिवारों की महिलाएं आर्थिक संकट के साथ दो-चार होकर नौकरी करने को विवश हो जाती हैं, पर कई भाई और माता-पिता द्वारा बहन और बेटी की कमाई से जीवन-निर्वाह करना उनकी विवशता भी है और समय की मांग भी। उसके लिए पाप-पुण्य की भाषा ही बदल चुकी है। राजेन्द्र यादव की कहानी 'खुले पंख टूटे डैने' में तो केवल शहर की नारी ही नहीं- अपितु ग्राम की नारी भी अपने परिवार के 'भरण-पोषण' के लिए अपने शरीर का सौदा करने को तैयार हो जाती है। 'मणि मधुकर' की कहानी 'फरिश्ते' एक ऐसी ही रोंगटे खड़े कर देने वाली कहानी है, जिसमें एक पति अपनी पत्नी और बेटी के शरीर का सौदा करके धनार्जन करके अपने परिवार का निर्वाह करता है। कमलेश्वर की कहानी- ''राजा निरबंसिया'' भी स्पष्टतया इसी विषय की अक्कासी करती है।

जम्मू-कश्मीर राज्य के डॉ. आदर्श की कहानी-''उखड़ा चिनार'' यद्यपि विस्थापन के दर्द की अक्कासी करती है, परन्तु साथ-ही-साथ जम्मू में विस्थापित हुए प्रो. राज़दान का बड़ा पुत्र अशोक श्रीनगर में अपनी सम्पत्ति बचाने के लिए तीन उग्रवादियों को अपने घर में बुलाकर नवरात्रों के त्योहार की भी परवाह किए बगैर उन्हें अपने घर की ऊपरी मन्ज़िल के एकांत कमरे में अपनी अनुपस्थिति में अपनी पत्नी द्वारा मांस-शराब परोसवाता है और उनमें से एक उसे अपने पास बिठाकर उसकी कमर पर हाथ रखकर शराब-मांस का मज़ा लेता है। इतना ही नहीं उस समय जब प्रो० राज़दान का पुत्र अशोक द्वारा मना करने पर क्रोधातुर हो कर उस कमरे में पहुँचता है तो वहाँ का अति भयावह और जघन्य दृश्य देखकर स्तब्ध रह जाता है। उसे देखते ही तीनों उग्रवादी खड़े होकर उसकी ओर अपनी-अपनी बन्दूकें तान लेते हैं और उनमें से एक के द्वारा कड़क कर यह पूछने पर-''ओय कौन है यह बुड्ढा ?'' तो प्रो. राज़दान की पुत्रवधू द्वारा यह कहने पर-''नहीं कुछ नहीं, हमारा हमसाया है ..... आप बैठें'' सुनकर प्रो. राजदान के मन को गहरा धक्का लगता है। उसकी आँखों के सामने गहरा अन्धेरा

1. इन्द्रप्रस्थ भारती, दिल्ली 2003, पृ० ~~232~~ 392

हो जाता है और अपनी अपमानित मनः स्थिति के साथ जैसे-कैसे सीढ़ियां उतर कर जम्मू की ओर चल पड़ता है।"[1]

लेखक की 'दूसरी लक्ष्मी बाई' और 'अब खूँटे उखड़ेंगे' कहानियां शराब के नशे के कारण होने वाले पतन की झांकी प्रस्तुत करती हैं, जबकि उसकी 'बरगद की छाँव' तथा 'आग लगी बस्ती बाना' कहानियां पूर्व प्रधान मन्त्री इन्दिरा गांधी की हत्या के बाद भड़के सिक्ख विरोधी दंगों के कारण गिरते मानवीय मूल्यों के साथ-साथ कुछ दयालु मनुष्यों द्वारा हिंसक दंगाइयों के सम्भावित चंगुल से कुछ लोगों को बचा लेने के चित्रण से मानवीय नैतिक-मूल्यों के उत्थान की अभिव्यक्ति भी करती हैं।

यह हर्ष का विषय है कि जम्मू-कश्मीर जैसे अहिन्दी भाषी राज्य में गत तीन-चार दशकों की अवधि में स्व. हरिकृष्ण कौल, वेद राही, ओम गोस्वामी, स. दीदार सिंह, डॉ. राज कुमार, डॉ. आदर्श, डॉ. अशोक जेरथ, अवतार कृष्ण राज़दान, डॉ. रतन लाल शान्त, महाराज कृष्ण सन्तोषी, सन्तोष सांगड़ा, शकुन्त दीप माला, किरण बख्शी, आदि अनेकों ऐसे सशक्त कहानीकार उभरे हैं जो अपने परिवेश के सरोकारों के प्रति गम्भीर रूप से संवेदनशील और जागरूक हैं। ये कहानीकार अन्य राज्यों के हिन्दी कहानीकारों के साथ कन्धे-से-कन्धे मिलाकर अपनी कहानियों में सभी ज्वलन्त मुद्दों की अक्कासी करने का भरसक प्रयत्न करते हैं। उनमें भी उग्रवाद और विस्थापन से होने वाले दर्द प्रमुख विषय रहते हैं।

जम्मू-कश्मीर राज्य में गत बीस वर्षों से उग्रवाद ने अपना जो घिनौना राक्षसी ताण्डव मचाया हुआ है उसके कारण नैतिक-मूल्यों की भी जो भारी क्षति हुई है उनका इन कहानीकारों ने अपनी कहानियों में बेझिझक और निर्भीकता से चित्रण किया है।

वैश्वीकरण के प्रभाव से यदि यों कहें कि अपसंस्कृति के दुष्प्रभाव से जम्मू-कश्मीर राज्य भी नहीं बच पाया है। भ्रष्टाचार, बलात्कार, हिंसा, लूट-खसूट, रिश्वतखोरी, भ्रूण हत्या, संयुक्त परिवारों में आती हुई दरारें आदि ज्वलन्त मुद्दे यहाँ की हिन्दी कहानियों में अपना स्थान बनाए हुए हैं। साँझे तौर पर हम ऐसे ज्वलन्त मुद्दों को उजागर करने वाली कहानियों में जम्मू के कहानीकार डॉ. ओम गोस्वामी की कुछ कहानियों का यहाँ उल्लेख कर सकते हैं। इनकी 'सनोवर बिल्ला में एक अजनबी' कहानी यहाँ शराब, भ्रष्टाचार और अनेक प्रकार की हेरा-फेरियों का घिनौना चित्र उपस्थित करती है वहाँ 'दर्द की दहलीज' कहानी में विधवा के चरित्र को भ्रष्ट करने के लिए कई हथकंडे अपनाने वाले चन्दू, डाक्टर, शाह और चौधरी के कुकृत्यों का पर्दा-फाश किया गया है। इनके अतिरिक्त इनकी गाँधीजन, रात का रखवाला, एक जंगल वाहियात, दर्द की मछली, हवाचक्र, शहर के भेड़िये, पराजित सीमांत, छठा तत्त्व और बदनसीब आदि अनेकों कहानियों में भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, अवैध यौन सम्बन्ध आदि अनेक ज्वलन्त मुद्दों को अपने कुशल कहानी शिल्प से चित्रित किया गया है।

---

1. *कथा अनन्ता ले. डॉ. आदर्श, आयास प्रकाशन 24, एम. आई. जी. हाउसिंग कालोनी, उधमपुर जम्मू 2003 पृ० 23*

जम्मू के अन्य कहानीकार सरदार दीदार सिंह के पहले कहानी संग्रह धुंधलके में घुटन, धुंधलके, प्रेमिका और पत्नी, दूसरे संग्रह 'अपने पराये लोग' में 'अतीत के साये, चौथी अंगूठी, श्यामली, तथा जमीर और इनके तीसरे संग्रह 'अनकही' में फालतू औरत, आदि कहानियों में मान मूल्यों के पतन के अनेक रूपों का सराहनीय चित्रण मिलता है। इनकी अधुनातन कहानी 'बोझ' और नीरू शर्मा की 'गुड़ की भेली' कहानियों में भ्रूण हत्याओं के लिए उत्तरदायी लोगों की गर्हित करतूतों पर कड़े व्यंग्य प्रहार किये गए हैं। दोनों कहानियां पाठकों के मन पर अपनी अमिट छाप छोड़ने वाली हैं।

दीदार सिंह की दो और कहानियां-'बेटियां' और 'बुझदिल' और ओ. पी. शर्मा सारथी की-'अभी समय नहीं हुआ,' कहानी समाज में दहेज के लोभियों तथा उन जैसी राह पर चलने वाले घटिया लोगों के अत्याचारों पर करारी फटकार लगाती है। जम्मू के ही एक अन्य कहानीकार छत्रपाल की कहानी-''छिटकी हुई इकाई'' और कश्मीर घाटी के कहानीकार हरिकृष्ण कौल की कहानी-''मातृ घाती'' में पारिवारिक सम्बन्धों में बिखराव आने के कारण उपजी कटुता भरी पीड़ा के परिणामस्वरूप टूटती संयुक्त पारिवारिक व्यवस्था के लिए उत्तरदायित्वों के कारनामों की वजह से टूटते नैतिक-मूल्यों का दिल कंपा देने वाले चित्रण है।

पुष्कर नाथ की 'जीते की मौत', 'एक तहसील', 'मुहर्रिर की दास्तान' और 'हृदय का रहस्य' कहानियां रिश्वतखोरी, षड्यन्त्र और हवेलियों की घृणित करतूतों के कारण गिरते मानवीय मूल्यों की अक्कासी करती हैं। डॉ. रतन लाल शान्त की कहानी 'सारस' जहां धर्मान्ध लोगों की काली करतूतों पर तीखी व्यंग्य चोट करती हैं तो वहीं धार्मिक सौहार्द और भाईचारे का संकेत देकर नैतिक-मूल्यों की रक्षा की वकालत भी करती हैं।

छत्रपाल की कहानी गांठधार धागे, में विधवा अमिता पुनर्निवाह के आग्रह को ठुकराकर अपने भीतर पलते नैतिक-मूल्यों की रक्षा करती है। लेखक की एक अन्य कहानी-'पिघला हुआ गुस्सा' में ढाबे में बर्तन साफ़ करने वाले परमा की अनुपस्थिति में तीन गुंडों द्वारा उसकी पत्नी के साथ किए गए बलात्कार का दिल दहला देने वाला चित्रण है।

शकुन्त दीपमाला की-कितिज, कसौटी और संकटमोचन चमचा, कहानियां नैतिक-मूल्यों के पतन के कई घिनौने चित्र प्रस्तुत करती हैं। डॉ. राजकुमार की खुले हाथ, दंशित, सलीब दर सलीब और दु:स्वप्न कहानियों में मूल्यों के उत्थान की बड़ी धीमी रेखा दिखाई पड़ती है। डॉ. अशोक जेरथ की कहानी-'घरौन्दा' में हम बलात्कार के कारण नैतिक पतन का चित्रण तो देखते हैं परन्तु इसका स्वरूप महाभारतकालीन नियोग प्रथा के साथ कुछ सीमा तक साम्यता रखता है।

अन्त में यह कहना उपयुक्त है कि यह विषय बड़ा बहुआयामी एवं बहुकोणीय होने के कारण इस आलेख के छोटे से कैनवस में समेटना यदि असम्भव नहीं तो कठिन होने पर भी यह आलेख कहाँ तक सन्तोष जनक बन पाया है, यह न्याय करना पाठकों के हाथ में है।

०००